International Journal of Jyotish Research: 2018; 3(1): 21-23

International Journal of Jyotish Research
(वेदचक्षु)

ISSN: 2456-4427
Impact Factor: RJIF: 5.11
Jyotish 2018; 3(1): 21-23
© 2018 Jyotish
www.jyotishajournal.com
Received: 07-11-2017
Accepted: 08-12-2017

प्रवीण ममगाई
दिल्ली विश्वविद्यालय,
दिल्ली, भारत

Correspondence
प्रवीण ममगाई
दिल्ली विश्वविद्यालय,
दिल्ली, भारत

संस्कृतवाङ्मये वर्णितस्य वास्तुशास्त्रस्य उपयोगिता

प्रवीण ममगाई

प्रस्तावना

वास्तु शब्द में 'वस्' धातु 'वस निवासे' से तुण् प्रत्यय के योग होने पर निष्पन्न होता है और वास्तु शब्द का अभिप्राय निवास से है। जहाँ मनुष्य निवास करते हैं वह वास्तु कहलाता है। भारतीय सभी सांस्कृतिक, धार्मिक, पारम्परिक तथा सभी विद्याओं का आधार और मूल वेदों को कहा गया है और यह सर्वविदित है कि चार वेदों के चार उपवेद कहे गये हैं यथा - ऋग्वेद का आयुर्वेद, यजुर्वेद का धनुर्वेद, सामवेद का गान्धर्व वेद और अथर्ववेद का स्थापत्यवेद है। स्थापत्यवेद का अभिप्राय भी निवास योग्य स्थान से ही है।

"आयुर्वेद धनुर्वेदं, गान्धर्ववेदमात्मनः।
स्थापत्यं चासीद् वेदं क्रमाद् पूर्वादिभिर्मुखैः।।"

ऋग्वेद में वर्णित एक ऋचा में वास्तोष्पति देव से प्रार्थना करते हुए कहा गया है कि -

"वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान्त्स्वावेशो अनमीवो भवा नः।
य् त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्वशंनोभव द्विपदे शं चतुष्पदे।।"[1]

हे वास्तोष्पते! तुम हमको समझो। हमारे घर को निरोग करने वाले हो। जो धान हम तुमसे मांगे, हमें दे दो। हमारे द्विपद एवं चतुष्पद के लिए कल्याणकारी हो।

वैदिककाल में वास्तुशास्त्र का उद्भव हुआ और उसका पूर्ण विकास आगम एवं पुराण काल में हुआ, अग्नि, भविष्य, नारद, आदि पुराणों में भी वास्तु का काफी वर्णन प्राप्त होता है और महाभारत में वास्तुशास्त्र के पूर्ण विकसित होने के काफी प्रमाण मिलते हैं। भविष्यपुराण में कहा गया है कि-

"गृहस्थस्य क्रियाः सर्वाः न सिद्धयन्ति गृहं विना"

ज्योतिषशास्त्र के मुख्य रूप से 3 भाग हैं। सिद्धान्त, होरा, संहिता और इन तीनों में वास्तुविद्या का वर्णन सर्वाधिक रूप से संहिता भाग में वर्णित है अर्थात वास्तु विद्या को संहिता भाग में ग्रहीत किया गया है।

वास्तुशास्त्र का उद्भव

वास्तुशास्त्र का उद्भव

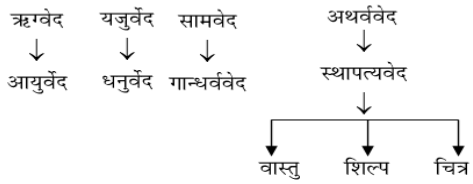

अथर्ववेद का उपवेद जो कि स्थापत्यवेद के नाम से प्रचलित है यह उत्तरवर्ती काल में वास्तु शास्त्र के रूप में परिणत हुआ।

वैदिक काल में वास्तु के अन्तर्गत केवल गृहों का निर्माण ही आता था। बाद में गृहों निर्माण के विकास के साथ ही, ग्रामों, नगरों, महानगरों का विकास होने लगा ये सभी विकास वास्तुशास्त्र के अन्तर्गत ही परिणित होने लगे और धीरे-धीरे मूर्तिकला एवं चित्रकला भी वास्तुकला के अंग बन गये और मूर्तिनिर्माण का शिल्प तथा चित्रकारिता को आलेख नामों से कहा जाने लगा। वास्तुकला में भित्तिचित्रों तथा भित्ति प्रतिमाओं को अपने में सम्मिलित कर लिया और यह कारण रहा कि भोजदेव ने "समराङ्गणसूत्रधार" में वास्तुशास्त्र को तीन भागों में विभक्त कर लिया - (1) वास्तु (2) शिल्प (3) चित्र। देववास्तु, राजवास्तु एवं जनवास्तु वास्तु के अन्तर्गत आये। प्रतिमा, धातु एवं पाषाण निर्माण शिल्प के अन्तर्गत आ गये तथा समग्र भित्ति चित्रों को आलेख के अन्तर्गत समाहित किया गया।

वास्तु की उपयोगिता

देखा जाय तो हमारे संस्कृत वाङ्मय में जो वास्तुविद्या वह हमारे समाज के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण और उपयोगी है। गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने के लिए निवास स्थान या कहें फिर गृह की परम आवश्यकता होती है और गृह का निर्माण कैसा हो और गृह निर्माण की जो नींव होती है उसका आधार भूमि परीक्षण कैसा हो इन सभी बातों पर मनन करते हुए हमारे वास्तुशास्त्र के आचार्यों ने अलग-अलग विधान बताये हैं।

गृहस्थस्य क्रिया सर्वा न सिद्धयन्ति गृहं विना।।[1]

भूमि चयन - वास्तु द्वारा जब गृह निर्माण किया जा रहा हो उस समय 'भूमिचयन' करना एक महत्त्वपूर्ण कार्य होता है। गृह निर्माण के लिए कैसी भूमि हो? कहाँ हो? किस दिशा में हो? भूमि शुभ या अशुभ दात्री है? इन सभी का विचार भूमि चयन करते समय किया जाता है। इन्हीं तथ्यों को वास्तुरत्नाकर नामक ग्रन्थ में कहा गया है कि सबसे पहले ग्राम, नगर या गृही की अनुकूलता देखकर तत्पश्चात् दिशा की अनुकूलता देखकर भूमि की अनुकूलता का परीक्षण करना चाहिए और फिर पिण्ड, आय, वार, नक्षत्रादि का विचार करना चाहिए।

आचार्य वराहमिहिर ने प्रशस्त भूमि का लक्षण बताते हुए कहा है कि "जिस भूमि पर उत्तम औषधी, वृक्ष, लता, उत्पन्न हो, मिट्टी मधुर, सुगन्धित, चिकनी एवं समतल हो, गति से रहित हो जहाँ के वातावरण और भूखण्ड में परिश्रम से थके हुए प्राणी के शरीर को सुख-शान्ति देने का सामर्थ्य हो, ऐसा प्रशस्त भूखण्ड वास्तुशास्त्र के अनुसार निवास योग्य, श्री सुख और शान्तिदायक होता है।

शस्तौषाधिद्रुमलतामधुरा सुगन्धा, स्निग्धा समान सुषिरा च मही नराणाम्।
अप्यध्वनि श्रमविनोदमुपागतानां, धत्ते श्रियं किमुत शाश्वतमन्दिरेषु।।[2]

वास्तु के अनुसार भूमि जितनी निर्दोष, ठोस और विभिन्न प्रकार के शुभ-लक्षणों से युक्त होगी उतनी ही स्थायी, सुदृढ़ और सुखदायी होगा और वास्तुशास्त्र में वर्गाकार, आयताकार और वृत्ताकार भूखण्डों को श्रेष्ठ माना गया है क्योंकि ये भूखण्ड क्रमशः धन का लाभ, सर्वसिद्धि दायक एवं बुद्धि की वृद्धि करने वाले होते हैं।

आयते सिद्धयस्सर्वाश्च तुरस्त्रे धनागमः।
वृत्ते तु बुद्धिवृद्धिः स्याद् भद्रं भद्रासने भवेत।।[3]

गृहनिर्माण करते समय पञ्चतत्त्वों का ज्ञान परमावश्यक

गृह निर्माण के सम्बन्ध में पञ्चतत्त्वों के विषय में ज्ञान होना परमावश्यक है, क्योंकि सम्पूर्ण मानव शरीर पञ्चतत्त्वों के आधार पर ही निर्मित हुआ, पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु इन पञ्चतत्त्वों का सही से उपयोग करना हमारे जीवन के लिए सुख एवं हमें ऊर्जा प्रदान करने जैसा है इन पञ्चतत्त्वों का सही उपयोग न करने पर और प्रकृति के विरुद्ध कार्य करने पर हमारी ऊर्जा नष्ट और कुप्रभावित होती है जिसके फलस्वरूप हम अस्वस्थ हो जाते हैं और अनेक रोगों और व्याधियों से ग्रस्त हो जाते हैं।

अतः इन पञ्चतत्त्वों का सन्तुलन बनाये रखना यह हमारे जीवन के लिए परमावश्यक है।

वास्तविक रूप से देखा जाय तो जब हमारे इस पञ्चतत्त्वयुक्त भौतिक शरीर की सृष्टि होती है और इस शरीर में प्राणों का संचार होता है तब जीवन की पक्रिया प्रारम्भ होती है और तब इसके संचालन के लिए त्रिदोषों का प्रादुर्भाव होता है, जो इस प्रकार है - आकाश एवं वायु तत्त्वों के विकार से वात दोष होता है अग्नितत्त्व के विकार से पित्त दोष की एवं जल और पृथ्वीतत्त्व के विकार से कफदोष की उत्पत्ति है।[4]

इन तीनों से उत्पन्न अनेक रोग हो जाते हैं, जैसे वात के प्रकोप से पञ्चाग्नि विषम हो जाती है, जिसके परिणामस्वरूप पेट में गैस की समस्या, मनोरोग, मूर्छा, क्रोध, सन्धि स्थानों में पीड़ा, उन्माद आदि।

पित्त के प्रकोप से पञ्चाग्नि तीक्ष्ण हो जाती है जिसके परिणामस्वरूप देह में ताप, जलन, यकृत सम्बन्धी रोग, पेट में अल्सर, अङ्गों में सूजन आदि।

कफ - कफ के प्रकोप से पञ्चाग्नि मन्द हो जाती है जिसके फलस्वरूप शरीर में जुकाम, श्वांस रोग, दमा, शर्दी, उल्टी एवं विकार आदि रोग होते हैं और इन त्रिदोषों का जहाँ एक साथ प्रभाव हो वहाँ कैंसर, पक्षाघात, हृदय रोग आदि गम्भीर रोग उत्पन्न होते हैं।

इन सभी के समाधान वास्तुशास्त्र में बताये गये हैं यदि गृह में अग्नितत्त्व को सही स्थान और दिशा में स्थित किया जाय तो इससे पित्त सम्बन्धी रोगों से मुक्ति मिल सकती है और फिर सम्भव हो सके तो गृह में आकाश और वायु तत्त्व को सही से रखना चाहिए जिससे कि वात जैसे दोष को दूर किया जा सके और फिर गृह में पृथ्वी और जल तत्त्व की सही व्यवस्था करनी चाहिए जिससे कफ दोष की उत्पत्ति न हो पृथ्वी को साफ और जल का स्राव (बहना) अथवा

---

1 वास्तुसांख्यम्, अ-1, श्लो-1

2 वृहत्संहिता, वास्तुविद्याध्याय श्लो-88

3 वृ.वा.मा., भूमेजीवितादिज्ञानम् श्लो-90, पृ. 18

4 षोडशाङ्गहृदयम् अ.-1, श्लो-29-30

स्वच्छ एकत्रित इन सभी को ध्यान में रखकर कफ दोष को दूर किया जा सकता है।[5]

दिशाओं का परिशीलन – आरोग्य

गृह निर्माण अथवा गृह में स्थित होने वाले शयनागार, भोजनालय, स्नानागार, देवालय, पुस्तकालय, आदि सभी किस-किस स्थान तथा कौन सी इन सभी के लिए उचित दिशा है इन सभी का ज्ञान भवन निर्माण के समय परमावश्यक है। ईशान कोण भारी होने से तथा उत्तर का भाग ऊँचा होने से स्त्रीवर्ग का स्वास्थ्य खराब होता है। घर में वायव्यकोण खुला होना चाहिए अन्यथा वायुविकार एवं मानसिक रोग होने की सम्भावना होती है और उत्तर दिशा में अधिक खाली स्था नहीं छोड़ना चाहिए, अधिक स्थान छोड़कर गृहनिर्माण करने से परिवार की महिलाओं को त्वचा सम्बन्धी रोग होता है। घर में कभी भी आग्नेयकोण में जल स्रोत और दक्षिणदिशा में पानी की टंकी इत्यादि नहीं रखने चाहिए यदि ऐसा हो तो घर में तनाव, माईग्रेन, हैजा, टी.बी. आदि रोगों से व्यक्ति पीड़ित हो जाते हैं। जलभण्डार, बोरिंग, नल और पानी हमेशा उत्तर दिशा में रखना चाहिए इससे पञ्चतत्त्वों में से जल तत्त्व को (शान्त) सही किया जा सकता है और किचन का सारा कार्य, चूल्हा, स्टोव, गैस, बिजली का मीटर, कम्प्यूटर, टीवी आदि सभी को आग्नेय दिशा में स्थापित करना चाहिए। ऐसा करने से अग्नि तत्त्व को सही किया जा सकता है। घर के मध्यभाग को स्वच्छ रखकर और घर की दीवार की ऊँचाई को अधिक करके आकाशतत्त्व को सही किया जा सकता है।

गृह के दक्षिण भाग में शयनकक्ष बनाना सही रहता है और उत्तर दिशा की ओर सर करके कभी सोना नहीं चाहिए, इसका मुख्य कारण यह है कि उत्तरी एवं दक्षिणी ध्रुवों के बीच में याम्योत्तर क्रम में चुम्बकीय बल प्रवाहित होता है इसलिए यदि कोई व्यक्ति उत्तर की ओर सिर करके सोता है तो उसके शरीर के चम्बकीय बल की दिशा और पृथ्वी के चुम्बकीय बल की दिशा एक-दूसरे के विपरीत हो जाती है, जिससे शरीर में रक्त संचार में बाधा उत्पन्न होती है और सिर दर्द, दु:स्वप्न, तनाव, अनिद्रा वातदोष एवं हृदयरोग उत्पन्न होता है।

उपसंहार

संस्कृत वाङमय में वास्तुशास्त्र की महती उपयोगिता है जिसके फलस्वरूप सम्पूर्ण मनुष्य जाति अपना जीवन सुख और समृद्धिपूर्वक व्यतीत कर सकता है वास्तुशास्त्र में वर्णित, भूमिचयन, गृह निर्माण, दिशा ज्ञान, पञ्चभौतिक तत्त्व, आरोग्यता, आदि अनेक विषयों पर चर्चा की गयी है जो कि मानव जीवन के मूल्यों को ध्यान में रखकर वैदिक काल में हमारे ऋषि महर्षियों ने जीवन कल्याण के लिए इतने बृहद वास्तुशास्त्र का निर्माण किया जिसकी उपयोगिता वैदिक काल में तो थी ही और आज वर्तमान काल में भी प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है और यदि मनुष्य वास्तु नियमानुसार गृहनिर्माण और उसे यथोचित स्थान जो कि वास्तु द्वारा उचित कहा गया है, करे तो व्यक्ति अपने जीवन में सुखी, निरोगी, सभी प्रकार से समृद्ध होकर अपना अमूल्य जीवन व्यतीत कर सकता है। आज हमें जितने भी प्राचीन देवालय, तोरण दुर्ग, बड़े-बड़े द्वार, स्थापत्यकला, अद्‌भुत शिल्प रचना, इत्यादि इन सभी को अवश्य ही वास्तु के आधार पर निर्मित किया गया है जिसके कारण आज भी प्राचीन देवालय अपने स्थानों पर (अडिग) स्थित है।

सन्दर्भ

1. अग्निपुराण
2. अथर्ववेदसंहिता
3. अपराजितपृच्छा
4. अभिनवस्वस्थवृत्त
5. ऋग्वेद संहिता
6. बृहत्संहिता
7. बृहद्‌वास्तुमाला
8. भागवद्‌
9. महाभारत
10. यजुर्वेद संहिता
11. वास्तुरत्नाकर
12. वास्तुरत्नावली
13. वास्तुराजवल्लभ
14. वास्तुसार
15. वास्तुसौख्यम्‌
16. विश्वकर्मवास्तुशास्त्र
17. राजवल्लभमण्डन
18. षोडशाङ्गहृदयम्‌
19. समराङ्गणसूत्रधार
20. अमरकोश, नारायण राम आचार्य, भारतीय कला प्रकाशन, दिल्ली-2004.
21. वैदिक कोश, चन्द्रशेखर उपाध्याय एवं अनिल कुमार उपाध्याय, नाग प्रकाशन, दिल्ली-1995.
22. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत-हिन्दी कोश, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
23. शब्दकल्पद्रुम, कान्त राधा, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली-1961
24. वाचस्पत्यम्‌, वाचस्पति तारानाथ तर्क, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, विद्या विहार, मुम्बइ

[5] अभिनव स्वस्थवृत्त, पृ. 20